International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 6; November 2016; Page No. 04-05

मीरा की काव्य साधना में रहस्यवाद

डॉ0 सुदर्शन राठी

ऐसाशिष्ट प्रोफेसर हिन्दी, महाराजा अग्रसेन महिला महाविद्यालय, झज्जर, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय साहित्य में विशेषकर भक्ति साहित्य में रहस्यवाद की सुदृढ़ परंपरा मिलती है। हिंदी भक्ति साहित्य में तो रहस्यवाद अपने चरम पर है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, सिद्धों, जैन मुनियों, नाथ पंथियों के साहित्य और हिन्दी भक्ति साहित्य के सगुण और निर्गुण भक्तों–संतों ने रहस्यवाद की परंपरा को सतत् आगे बढ़ाने का काम किया है।

रहस्यवाद का आधार है – अव्यक्त अज्ञात। भक्त का आधार है – ज्ञात और व्यक्त, अर्थात अव्यक्त को व्यक्त ही रखकर भक्त अराधना नहीं कर सकता। अव्यक्त ब्रह्म को अवतार लेना पड़ता है और तब भक्त उस मानवीय अभिनय करने वाले किंतु तत्त्वतः ब्रह्म से अपना संबंध जोड़कर उससे भक्ति की याचना करता है, उसके गुण, कीर्तन, पद–सेवा, पूजा, अर्चना और जप आदि में मग्न रहता है।

मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की हैं यही कारण है कि उनके और प्रियतम श्रीकृष्ण के बीच कोई भी दुराव अथवा छिपाव नहीं है। ऐसे एकानिष्ठ प्रेम से कुछ भी अदेय नहीं रह जाता। हिंदी साहित्य में रहस्यवाद का चरम विकास सूफी कवि जायसी में देखा जा सकता है, लेकिन प्रेमानुभूति की गहराई की दृष्टि से मीराबाई सूफी कवि जायसी की अपेक्षा अधिक सफल कही जा सकती है क्योंकि मीरा एक अल्हड़ प्रेमिका है और जायसी मूलतः एक कवि। भले ही मीरा की प्रेमानुभूति जायसी की भाँति व्यापक न हो लेकिन हृदय को छू देने की क्षमता के लिए मीराबाई अद्वितीय है। मीरा तो अपने प्रियतम के प्रेम में पूर्णतः पगी हुई है, उनके प्राण तो अपने प्राणेश्वर के साथ रमण ही करते है। प्रेमिका और प्रियतम के मध्य तनिक भी दूरी नहीं रही है। मीरा कृष्ण को स्पष्ट शब्दों में अपना पति स्वीकार करती है–

''मेरे तो गिरधर गुपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर–मुकुट, मेरो पति सोई।
मीराबाई स्वयं को अचल सुहागिनि भी मानती हैं
'झूठा सुहाग जगत करही सजनी, होय–होय मिट जासी।
मैं तो एक अविनासी वरूँगी, जो काल न खासी।
और भी जिसके पिया परदेस बसत हैं, लिखि–लिखी भेजै पाती।
मेरा पिया मेरे हिय बसत है ना कहुँ आती–जाती।''[1]

मीराबाई कृष्ण के अतिरिक्त दूसरे पुरुष स्वीकार नहीं करती। उच्चकोटि की कृष्णभक्ति मीरा के बारे में पं. रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि ''जब लोग इन्हें खुले आम मंदिरों में पुरुषों के सामने जाने से मना करते तब वे कहतीं है कि कृष्ण के अतिरिक्त और पुरुष है कौन जिसके सामने लज्जा करूँ ? मीरा अपने प्रियतम को अपने से पृथक ही नहीं मानती। प्रेम की परिधि को पूर्णता संयोग की सुखानुभूति और वियोग के ताप से ही संभव है। मिलन का सुख अपने आप में अपूर्ण और अधूरा होता है। प्रेम–व्यापार में मिलन की स्थिति तो प्रेमसिक्त हृदय की तड़पन का पूर्ण विराम है। प्रेम के संसार का सर्वाधिक उज्ज्वल पक्ष विरह की तड़प होती है, विरह की मर्मांतक पीड़ा होती है, प्रतीक्षा के बिना न बीतने वाले क्षण होते हैं। मीरा की पदावली में निस्संदेह मिलन से अधिक मिलन की उत्कंठा का, प्रियतम से अधिक प्रियतम की प्रतीक्षा का वर्णन मिलता है। मीरा अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में इतनी उन्मादिनी–सी हो गई है कि लाज और संकोच का त्याग करके महलों के ऊपर चढ़–चढ़ कर अपने प्रियतम की बाट जोहती है –

सुनि हो मैं हरि आवन की आवाज।
म्हैलाँ चढ़ जोऊँ मेरी सजनी, कब आवैं महाराज।[2]

प्रतीक्षा का एक–एक क्षण 'युग' के समान व्यतीत होता है। मीरा ने प्रतीक्षा के इन क्षणों का अत्यंत प्रभावोत्पादक वर्णन किया है जो निसंदेह मिलन की सुखानुभूति से कही अधिक मार्मिक बन पड़ा है। उन्हें तो घर–आँगन कुछ भी नहीं सुहाता। अपने प्रियतम की प्रतीक्षा के दिन गिनते–गिनते उनकी अँगुलियों की रेखाएँ तक घिस गई हैं–

'होली पिया बिन लागाँ री खारी।
सूनो गाँव देस सब सूनो, सूनी सेज अटारी।
देस–बिदेसणा जावाँ म्हारी अणेशा भारी।
गणताँ–गणताँ घिस गयाँ रेखाँ, आँगरियाँ री मारी।
आयाणा मुरारी।'[3]

प्रियतम से मिलन की उत्सुकता में प्रेमिका का चैन और नींद कहाँ रह सकते हैं। यह सारी–सारी रात जगाती है और अपने प्रियतम की बाट जोहती है –

सखी म्हारी नींद नसाणी हो।
पिय रो पंथ निहारता सब रैण विहाणी हो।
सखियन सब मिल सीख दयाँ मण एक न माणी हो।
बिन देख्याँ कल न पड़ा मन रोसणा ठाणी हो।
अंग खीण व्याकुल भ्याँ मुख पिय–पिय बाणी हो।
अंतर वेदन विरह री म्हारी पीड़ णा जाणी हो।
ज्यूँ चातक घड़कूँ रटे मछरी ज्यूँ पाणी हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, सुध–बुध बिसराणी हो।[4]

रहस्यानुभूति का सत्य किसी दार्शनिक सिद्धांत के खंडन या मंडन में विश्वास नहीं रखता। रहस्योन्मुखी धारा के अधीन ईश्वरीय सत्ता ज्ञान की नहीं अपितु अनुभूति का विषय भी बन जाती है और उस दिव्यानुभूति में ज्ञाता और ज्ञेय के मध्य कोई दूरी नहीं रह जाती है, एक दूसरे में तादात्म्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। संकोच लोकलाज की मर्यादाएँ एक–एक करके धराशायी होती जाती है और फिर ज्ञाता मीरा की भाँति गा उठता है –

म्हारूँ री गिरधर गोपाल, दूसराँ णाँ कूयाँ
दूसरा णा कूयाँ सकल लोक जूयाँ।

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ
गिरिधर म्हाँरो साँचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ।[5]

मीरा के प्रेमपरक रहस्यवाद में प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम है, प्रेम की पुकार है, पीड़ा है –

हे री, मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरी दरद न जाणै कोय।
घायल की गति घायल जाणै, और न जाणै कोय।
सूली ऊपर सेज पिया की, केहि विधि मिलना होय।
दरद की मारी बन–बन डोलूँ, बैद न मिलिया कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटैगो, बैद साँवलिया होय।।
मीरा श्रीकृष्ण से मिलकर उन्हीं में लीन हो जाती हैं –
पचंरंग चोला पहर्या सखिम्हाँ, झिरमिट खेलन जाती।
वाँ झिरमिट माँ मिल्या साँवरो, देख्याँ तन–मन राती।[6]

रहस्योन्मुखी भावना की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह अपनी ही प्रत्यक्ष और असंदिग्ध अनुभूति में विश्वास करती है। अनुभूति का स्वरूप अपने आप में नितांत स्वच्छ और निर्मल होता है। मीरा की स्वानुभूति भी अत्यंत स्वाभाविक और सहज बन पड़ी है और निस्संदेह इसका कारण यह है कि मीरा के पास अपने प्रियतम से पूर्ण तादात्मय स्थापित करने का अपेक्षातया अधिक अवकाश था। मीरा भी अपने आराध्य के प्रति केवल श्रद्धा का ही भाव नहीं रखती अपितु उसके प्रत्यक्ष ज्ञान का दावा भी करती है। उनके आराध्य श्रीकृष्ण अद्वितीय होते हुए भी एक 'चिर–परिचित' प्रतीत होता हैं, अनिर्वचनीय होते हुए भी अपने से लगते हैं। मीरा अपने आराध्य के प्रति एक विचित्रा भाव रखे हुए हैं जो कि बाह्य रूप से धार्मिक आवरण धारण किए हुए भी मीरा का नितांत व्यक्तिगत भाव प्रतीत होता है। यद्यपि मीरा कई बार अपने प्रियतम को प्रभु, गिरधर नागर, हरि अविनाशी आदि कहकर उनके दिव्य अलौकिक रूप की प्रतिष्ठा करती है किंतु उनकी मूल कामना तो वास्तव में यही है कि –

म्हाँ गिरधर आगाँ नाच्या री।
णाच णाच म्हाँ रसिक रिझावा, प्रीत पुरातन जाँच्याँ री।
स्याम प्रीत रो बाँधि धुँधरयाँ, मोहन म्हारो साँचाँ री।
लोक–लाज कुलरा मरजाँदाँ, जगमाँ णेक णा राख्याँ री।
प्रीतम पल छब णा बिसरावाँ, मीरा हरि रंग राच्याँ री।[7]

मीरा अपने प्रियतम के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव रखती है। उनके मनोहर रूप को देखकर प्रभोमत्त होकर करताल बजा–बजा कर नाच उठती है। मीरा का युग हिंदी साहित्य का भक्ति युग था और इस युग में भी रहस्यवाद की परंपरा बहुत प्राचीन रही है। यद्यपि उपनिषदों की उपासना में भक्ति पर अधिक बल नहीं दिया गया था किंतु भक्ति युग में हिंदी के विभिन्न भक्त–कवियों ने समर्पण और भक्ति द्वारा उस लक्ष्य को प्राप्त करने की सफल चेष्टा की है। मीरा के काव्य में तो समर्पण का भाव ही अधिक है क्योंकि माधुर्य भाव की भक्ति में यही समर्पण सर्वाधिक उपयुक्त रहता है। मीरा के समर्पण की पराकाष्ठा देखते ही बनती है –

गिरिधर म्हाँरों साँचों प्रीतम देखत रूप लुभाँऊ।
रैण पड़े तब ही उठि जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ
रैण बिना वाके संग खेलूँ, ज्यूँ वाहि रिझाऊँ
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीत पुरानी, उण बिण पल न रहाऊँ
जनाँ बैठावें तितही बैठूँ, बेचे तो बिक जाऊँ।[8]
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार–बार बलि जाऊँ।

यही नहीं, मीरा के गीतों में योगियों की पारिभाषिक शब्दावली का भी प्रयोग मिलता है जो कि सगुण भक्त मीरा के 'प्रेम के मधुर राग' से मेल नहीं खाता है। मीराबाई पर निर्गुणवादियों का भी प्रभाव पड़ा था, लेकिन वे निर्गुणोपासिक नहीं थी। मीराबाई के जीवन में व्याप्त केवल एक ही भाव है, एक ही रस है और एक ही रंग है। श्रीकृष्ण भक्ति के अतिरिक्त वे कुछ भी जानना अथवा समझना नहीं चाहती थीं। सूत्र–रूप में वे गिरधारी की अपनी थीं और गिरधारी उनके जीवन–सर्वस्व थे। उनकी भक्ति का आदर्श ब्रज की गोपियॉ थीं और उनका प्रेम भी गोपी–भाव से संबंद्ध था। प्रसिद्ध है कि ''ललिता'' का अवतार मीराबाई के रूप में हुआ था। अतः विह्वलता, विषाद और वेदना की निष्कपट अभिव्यक्ति मीरा के पदों की विशेषता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मीरा की पदाबली में रहस्यवादी भावनाओं की झलक भी मिलती है। लौकिकता से विमुख होकर मीरा अपने गिरधारीलाल के प्रति उत्सुकता, विस्मय, जिज्ञासा, लालसा एवं मिलनानुभाव के भाव प्रकट करती है। यह एक प्रकार की दिव्यानुभूति है क्योंकि इका संबंध अलौकिक शक्ति से होता है। तथापि मीरा की इस रहस्योन्मुखी भावना की भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यही है कि प्रेम का सूत्र, किसी न किसी रूप में सर्वत्र आच्छादित रहता है। मीरा की यह प्रेम–भावना, रहस्यवादी दृष्टि के स्पर्श से और अधिक घनीभूत हो गई है। मीरा की यह प्रेम भावना, रहस्यवादी दृष्टि के स्पर्श से और अधिक घनीभूत हो गई है। मीरा का यह प्रेम–भाव व्यापक तो अधिक नहीं है किंतु तीव्र बहुत कम है। प्रेम का इतना उन्मुख बिलास संभवतः हिन्दी के अन्य कवियों में दुर्लभ ही होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूचि

1. गगनान्चल, अप्रैल–जून 2008, पृ. 30
2. वही पृ. वही
3. गगनान्चल, अप्रैल 2008, पृ. 30
4. मध्यकालीन काव्य कुन्ज, डा. रामसजन पाण्डेय, पृ. 73
5. वही पृ. 69
6. वही पृ. वही
7. गगनान्चल, अप्रैल–जून 2008, पृ. 32
8. मध्यकालीन काव्य कुन्ज, डा. रामसजन पाण्डेय, पृ. 70